पेरिस
दिसम्बर २८, २००६

सन्देश संख्या १११

# दक्षिण स्पेन विश्वविद्यालय के उत्कृष्ट एवं ख्यातिलब्ध गणितज्ञ भक्त को पत्र

प्रिय जे....जी,

शिवेन्दु प्रायः यह कहता रहता है कि गणित एवं अध्यात्म का अत्यन्त गहरा संबंध है । घनिष्ठ मित्र एवं भक्त डा. जे. जी. ने इसे अच्छी तरह प्रमाणित किया है । उनके द्वारा घुटनों के बल बैठकर अपना सिर किसी गुरूजी के चरणों को स्पर्श करने हेतु झुकाना, पश्चिम के लोगों को अपमानजनक लगता है किन्तु वे उसकी चिन्ता नहीं करते । आपसी संवाद में लम्बे अन्तराल के बावजूद एस एल (शिवेन्दु लाहिड़ी) एवं जे जी के मध्य अत्यन्त मजबूत एवं जीवन्त संबंध बना हुआ है । अप्रैल २००६ में सेविले में ओलिवर के घर पर हमारे मिलन के कई महीनों बाद आपके हाल के पत्र से वस्तुतः बहुत आनन्द हुआ ।

सांख्य प्रज्ञा अर्थात् स्वाध्याय की समझदारी घर के मुख्य द्वार की तरह है जिससे होकर व्यक्ति कार्य करने या अपने उत्तरदायित्व के निर्वहन हेतु बाहर की दुनिया में जाता है । यही मुख्य द्वार व्यक्ति को शान्ति एवं विश्राम के लिए पुनः अन्दर भी आने देता है । सुरक्षा की दृष्टि से मुख्य द्वार का मजबूत होना जिस तरह आवश्यक है, उसी तरह ''जो है'' अर्थात् अन्तर्जीवन यानी कि अस्तित्व के प्रति उपलब्ध होने के लिए व्यक्ति को सांख्य प्रज्ञा में दृढ़तापूर्वक स्थित होना चाहिए । सांख्य–प्रज्ञा व्यक्ति को बाहर की दुनिया में, ''जो होना चाहिए'' के अनुरूप कार्य करने या उसके जैसा आचरण करने में भी समर्थ बनाती है । सांख्य समझदारी एवं निर्द्वन्द्वता की ऊर्जा में ही विचारमुक्त, अनुभवमुक्त, निर्विकल्प, निष्पक्ष, पूर्वाग्रहरहित, पूर्ण एवं क्रियाशील सजगता होती है । बाहर की दुनिया में अर्थात् मन में जाने हेतु तथा पुनः जीवन में लौटने हेतु यही मुख्य द्वार है ।

एक व्यक्ति अपने घर को जलता हुआ देखकर पागल की तरह रोने लगा। वह जोर–जोर से चिल्लाने लगा कि वह जिन्दा जल रहा है । तभी उसके एक पड़ोसी ने शीघ्रता से आकर कहा, ''क्या तुम नहीं जानते कि तुम्हारे बेटे ने यह घर पहले ही बेच दिया है ?'' यह सुनकर अचानक वह व्यक्ति खुशी से पागल की तरह हँसने लगा और कहने लगा कि उसका बेटा दुनिया में सबसे चतुर है। फिर एक दूसरा पड़ोसी आया और बोला, ''सौदा तो हो चुका है किन्तु तुम्हारे बेटे को अभी तक एक रूपया भी नहीं मिला है ।'' पुनः वह व्यक्ति और भी जोर–जोर से रोने लगा, अपनी छड़ी से अपना सिर पीटने लगा और विलाप करने लगा, ''मैं जिन्दा जल रहा हूँ''। यहाँ अन्तर्जीवन अर्थात् अस्तित्व की समझदारी में लौटने हेतु 'सांख्य–द्वार' उपलब्ध नहीं है और इसीलिए व्यक्ति बहिर्जगत के सुख–दुःख तक ही सीमित है ।

भगवद्गीता विवेकयुक्त बुद्धि अर्थात् प्रज्ञा को ''व्यवसायात्मिका बुद्धि'' कहती है । इसका अर्थ है – दृढ़ अन्तर्दृष्टि और यथार्थता का स्थिर बोध । गीता स्प रूप से घोषणा करती है–''वैसे अज्ञानी जो बाह्यजगत की वासना (अर्थात् मन की प्रसन्नता एवं उत्तेजना) में फँसे रहते हैं, को सजगता की ध्यानशील क्रियाशीलता में स्थिर इन्द्रियबोध (अर्थात् जीवन) और दृढ़ अन्तर्दृष्टि की प्राप्ति नहीं होती'' (२:४४) । कृष्ण (सर्वव्यापी चैतन्य) इसके बाद कहते हैं, ''बुद्धौ शरणमन्विच्छ'' अर्थात् ''प्रज्ञा, सांख्य, स्वाध्याय, अन्तर्दृष्टि, बुद्धि की शरण में आओ'' (२:४९)।

कृष्ण को इस बात के लिए धन्यवाद है कि उन्होंने ''दस शील'' का धर्मादेश जारी नहीं किया नहीं तो केवल अपराध और अपराध बोध उत्पन्न होता और उससे मस्तिष्क में और भी मानसिक दोष उत्पन्न होता । सर्वव्यापी चैतन्य और आगे सुझाव देते हैं–''सांख्य बुद्धि (शुद्ध चैतन्य) से जुड़ने के लिए चित्तवृत्ति के मिथ्या द्वैत से मुक्त होना होगा और तभी 'योग' उपलब्ध होगा और इसी से होती है निष्पक्ष एवं निष्प्रयोजन कार्य में सर्वोत्कृ कुशलता'' (२:५०)। व्यक्ति जब अच्छा और बुरा या उचित और अनुचित के द्वैत में फँसा नहीं रहता तब वह कभी भी कोई गलती नहीं कर सकता । और व्यक्ति जब तक स्वयं द्वैत में रहता है तब तक इस बात की आशंका रहती है कि व्यक्ति हमेशा ही गलती करेगा । विभाजन (न की विविधता) से मुक्ति ही जीवन्तता, सद्गुण और समझदारी की ऊर्जा है ।

अनिश्चित एवं काल्पनिक संख्या के घातांकी फलन का क्रियात्मक मान वास्तविक हो सकता है, इसे नेति, नेति की सांख्य प्रक्रिया से समझा जा सकता है । गणीतीय समीकरण $e^{i\pi} = -1$ का यही सन्देश है । समस्त प्रकार के प्रयोजन भ्रांति ''मैं'' को सतत् कुछ बनने की प्रक्रिया में फँसाये रखते हैं । मस्तिष्क में मौलिक रूपान्तरण से ही इन प्रयोजनों से मुक्ति सम्भव है ।

जहाँ कर्त्ता और कम भिन्न–भिन्न हैं, वहाँ कार्य करो और जहाँ कर्त्ता ही कम है अर्थात् जहाँ दोनों भिन्न नहीं हैं, वहाँ बोध में रहो । यह क्रियायोग की प्रारम्भिक समझदारी (स्वाध्याय) है ।

।। जय गणित ।।